E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

रससूत्रविमर्श या रसनिष्पत्ति और भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी,
सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

भरतमुनि ने रस के उन्मीलन की सबसे पहली प्रतिष्ठा अपने 'नाट्यशास्त्र' में की। इस विषय में उनका प्रसिद्धसूत्र है-"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः"। अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। देखने में यह सूत्र जितना छोटा लगता है, विचार करने में यह उतना ही सारगर्भित है। अनेक टीकाकारों इसके व्याख्यान में अपनी प्रतिभा तथा विशिष्ट मत का पूरा उपयोग किया है।

भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद-

आचार्य भट्टलोल्लट रससूत्र-"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः" की व्याख्या करते हुए कहते हैं-

विभावों ललना आदि आलम्बन तथा उद्यान आदि उद्दीपन कारणों से रति आदि भाव (स्थायीभाव) उत्पन्न होता है, अनुभाव कटाक्ष, भुजाक्षेप आदि कार्यों से प्रतीति के योग्य किया जाता है, व्यभिचारीभाव अर्थात् निर्वेद आदि सहकारी भावों द्वारा परिपुष्ट (उपचित) किया गया मुख्य रूप से राम आदि अनुकार्य में तथा उनके रूप का अनुसन्धान अर्थात् रामादि के रूप का अनुसन्धान के कारण (अनुकर्ता) नर्तक में भी प्रतीयमान (प्रतीत होने वाला) रस है। यह भट्टलोल्लट प्रभृति विद्वानों का मत है-

"विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणैः रत्यादिको भावो जनितः, अनुभावे, कटाक्षभुजाक्षेप्रभृतिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः व्यभिचारिभिर्निवेदादिभिः सहकारिभिरूपचितो मुख्यया वृत्या रामादावनुकार्ये तद्रूपतानुसन्धानान्नत्तकेऽपि प्रतीयमानो इति भट्टलोल्लटप्रभृतयः"।

वस्तुतः भरतसूत्र के व्याख्याकारों में भट्टलोल्लट उत्पत्तिवादी आचार्य हैं। भरतसूत्र में दो शब्द व्याख्येय हैं संयोग और निष्पत्ति। भट्टलोल्लट ने 'संयोग' शब्द के तीन अर्थ किये हैं-उत्पाद्य-

उत्पादकभाव, गम्य-गमकभाव और पोष्य-पोषक भाव। इसी प्रकार 'निष्पत्ति' शब्द के भी तीन अर्थ करते हैं- 'उत्पत्ति', 'प्रतीति' और 'उपचिति'। अर्थात् विभाव के साथ स्थायीभाव का संयोग उत्पाद्य-उत्पादक भाव सम्बन्ध से रस की निष्पत्ति (उत्पत्ति) होती है। यहाँ पर निष्पत्ति का अर्थ 'उत्पत्ति' है। अनुभावों के साथ 'संयोग' अर्थात् 'गम्य-गमक' भाव सम्बन्ध के होने पर निष्पत्ति का अर्थ 'प्रतीति' होगा। व्यभिचारीभावों के साथ पोष्य-पोषक भाव सम्बन्ध होने पर निष्पत्ति का अर्थ 'उपचिति' होगा। इस प्रकार रत्यादि स्थायीभाव का विभावों (आलम्बन और उद्दीपन) के साथ 'जन्य जनक' भाव सम्बन्ध होने पर रस की 'उत्पत्ति' होती है और अनुभावों कटाक्षादि अनुभावों के साथ 'गम्य-गमक' भाव सम्बन्ध होने पर रस की 'प्रतीति' होती है तथा सहकारी (व्यभिचारी) भावों के साथ 'पोष्य-पोषक' सम्बन्ध होने पर रस की पुष्टि होती है।

अन्य मत के अनुसार ललना आदि आलम्बन विभावों के द्वारा जन्य-जनक भाव सम्बन्ध से रत्यादि भाव उत्पन्न होता है, उद्यानादि रूप उद्दीपन विभाकों को उद्दीप्य-उद्दीपक भाव सम्बन्ध से वह उद्दीप्त होता है, कटाक्ष-भुजाक्षेपादि अनुभावों के द्वारा गम्य-गमक सम्बन्ध से प्रतीति के योग्य होता है और निर्वेदादि व्यभिचारीभावों के द्वारा पोष्य-पोषक भाव सम्बन्ध से परिपुष्ट (उपचित) किया गया रत्यादि स्थायी भाव ही रस है ।

वस्तुतः स्थायीभाव ही रस है। मानव-हृदय में रत्यादि भाव प्रसुप्त अवस्था में विद्यमान रहता है जो नायक-नायिकादि आलम्बन कारणों से उत्पन्न होकर, उद्यानादि रूप कारणों से उद्दीप्त होकर तथा कटाक्षादि रूप कार्यों से अभिव्यक्त होकर और व्यभिचारी भावों से पुष्ट होकर रस कहलाता है इस प्रकार विभावादि के संयोजन से उपचित स्थायीभाव ही रस रूप में उत्पन्न होता है। अन्य आचार्य कहते हैं कि विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भावों को संयोग से अर्थात् 'जन्य-जनक' भाव सम्बन्ध से रस की 'उत्पत्ति' होती है और 'गम्य-गमक' भाव सम्बन्ध से रस की 'अभिव्यक्ति' होती तथा 'पोष्य-पोषक' भाव सम्बन्ध से रस की 'पुष्टि' होती है। इस प्रकार उनके मतानुसार विभावादि के संयोजन से रस की ही 'उत्पत्ति', 'अभिव्यक्ति' या 'पुष्टि' होती है। किन्तु भट्टलोल्लट के मतानुसार विभावादि के द्वारा उपचित स्थायीभाव ही रस रूप में उत्पन्न होता है। यही भट्टलोल्लट का 'उत्पत्तिवाद' सिद्धान्त है। भट्टलोल्लट के इस

सिद्धान्त के अनुसार मानव-हृदय में वासना रूप में विद्यमान रत्यादि भावों के रस रूप में उत्पन्न होने में विभावादि कारण और अनुभाव कार्य तथा व्यभिचारी सहकारी होते हैं। इस प्रकार 'कार्य-कारणभाव' सम्बन्ध के समान ही विभावादि के संयोग से स्थायीभाव रस रूप में उत्पन्न होता है। अतः उपचित स्थायीभाव ही रस है जो अनुकार्य में रहता है, किन्तु अनुसन्धान के बल से अनुकर्ता 'नट' में अनुकार्य की तद्रूपता का आरोप कर लिया जाता है। इसलिए इस सिद्धान्त को 'आरोपवाद' भी कहा जाता है। भट्टलोल्लट का यह सिद्धान्त मीमांसा तथा वेदान्त का मतानुगामी सिद्धान्त कहा जाता है ।

भट्टलोल्लट के इस मत का अनुसरण दण्डी आदि प्राचीन आचार्यों ने भी किया है। दण्डी का कथन है कि 'रूप बाहुल्य के योग से रति (स्थायीभाव) ही शृङ्गार-रसता को प्राप्त करती है और परकाष्ठा पर पहुँच कर क्रोध ही रोद्र रसरूपता को प्राप्त करता है।

इस मत पर आक्षेप करते हुए भी शंकुक कहते हैं कि आप मुख्य रूप सें अनुकार्य राम में और गौण रूप से अनुकर्ता नट में रस की उत्पत्ति, प्रतीति और पुष्टि मानते हैं तो सामाजिकों के हृदय में रस की उत्पति कैसे होगी? दूसरे, अनुकार्य रामादि तो अब इस जगत् में नहीं है तो इस समय के अभिनय से उनमें रसानुभूति कैसे होगी और इसी प्रकार अनुकर्ता नट में भी रसानुसति कैसे होगी? तीसरे, अनुकार्य कल्पित होते हैं जिनका अस्तित्व ही प्रामाणिक नहीं, तो उनमें रसानुभूति कैसे? चौथे, हास्यरस के छः भेद जो आश्रयगत तथा सहृदयगत भी होते हैं तो रस को दोनों में परिमित मान लेने पर सहृदय में ये भेद नहीं बनेंगे। पाँचवें, यदि स्थायी के तारतम्य से रस भेद मान भी ले तो काम की दस अवस्थाओं में असंख्य रस मानने पड़ेगें। छठे, करुण रस में प्रारम्भ में शोक तीव्र होता है जो बाद में मन्द देखा जाता है तथा इसी प्रकार रोद्र वीर शृंगार में भी क्रोध, उत्साह, रति आदि का भी ह्रास देखा जाता है। अतः उपचय के स्थान पर अपचय (ह्रास) की स्थिति में उपचित स्थायीभाव रस है यह कहना असंगत होगा। सातवें, स्थायीभाव का विभादि के साथ संयोग न होने से विभावादि के लिङ्गत्व के अभाव में अनुमान भी नहीं होगा।